*International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)*
*ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714*
*www.ijhssi.org ||Volume 8 Issue 2, Ser. I ||February, 2019 || PP.101-104*

# परिस्थितिकीय अवधारणा और समाज

**डॉ जितेंद्र कुमार**
*एसोसिएट प्रोफेसर*
*समाजशास्त्र विभाग एस. एम. कॉलेज चंदौसी*

**सारांश**

मानव इतिहास के प्रारम्भिक युगों में मनुष्य भी अन्य जीवों की भॉति पूरी तरह अपने पर्यावरण पर ही आश्रित था। कृषि के विकास से मानव ने स्थाई बस्तियां बसायीं। खनिजों के खनन ने औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया। अपने उपकरणों के बल पर मनुष्य पर्यावरण का स्वामी बन बैठा। विगत सौ वर्षो में जनसंख्या में हुयी भारी वृद्धि के कारण मानव की आवष्यकताओं में भी भारी वृद्धि हुयी है। परिणामतः पर्यावरण में जो परिवर्तन हुये उनके कारण मानव अस्तित्व को ही खतरा हो गया है। जनसंख्या विस्फोट प्राकृतिक संसाधनों का असंतुलित विदोहन प्रारम्भ करने को मजबूर करता है जिससे वायु, जल, मृदा, ध्वनि आदि प्रदूषण तो पनपतें ही हैं बाढ़, सूखा समान तमाम आपदाये आ टपकतीं हैं। इन सब के दुष्परिणाम स्वरुप गरीबी का दुष्चक्र उत्पन्न होता है फलस्वरुप जीवों में संघर्ष उत्पन्न हो जाते हैं।

समाज प्रकृति का एक अंग है, मानव समाज में रहता है, समाज के सभी प्राणी प्रकृति से प्रभावित होते हैं। प्रकृति के अभाव में सामाजिक जीवन असंभव है। हमारा सौभाग्य है कि हम सौर मण्डल के विषिष्ट ग्रह पृथ्वी पर रहतें हैं। पृथ्वी की विषेषता है इसका पर्यावरण जो मनुष्य समेत सभी जीवों के अनुकूल है। पृथ्वी न अधिक ठण्डी है, न अधिक गर्म। पृथ्वी के चारो ओर फैले वायुमण्डल में जीवनदायी आक्सीजन पायी जाती है। वायुमण्डल के कारण पृथ्वी पर दिन और रात तथा गर्मियों और सर्दियों के तापमान में बहुत ज्यादा अन्तर नही होता है। तापमान की इसी विषिष्टता के कारण पृथ्वी पर विषाल मात्रा में जल पाया जाता है। तापमान परिवर्तन के कारण जल का संचरण जलमंडल, स्थलमंडल और वायुमंडल के बीच होता रहता है। **हर्सकोविट्स** के अनुसार 'पर्यावरण सम्पूर्ण बाह्य परिस्थितियों और उसका जीवधारियों पर पड़ने वाला प्रभाव है जो जैव जगत के विकास का नियामक है।'

पर्यावरण, भौतिक एवं जैविक दोनो ही प्रकार के संघटकों से निर्मित होता है। भौतिक संघटक के अन्तर्गत पृथ्वी का स्थलमण्डल, जलमण्डल एवं वायुमण्डल आते हैं। जैविक संघटक में पेड़–पौधे और छोटे–बड़े सभी जीव–जन्तु सम्मिलित हैं। इनसे सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पर्यावरण का सृजन होता है ।

सभी जीवधारी अपने अपने स्तर पर सामाजिक समूह संगठित करके सामाजिक पर्यावरण का निर्माण करते हैं। जिससे उसमें जीवन यापन की प्रक्रिया सुचारु रुप से चल सके। जीवों द्वारा अपने निर्वाह तथा संवर्धन व विकास के लिये भौतिक पर्यावरण से कुछ न कुछ प्राप्त करने की प्रक्रिया के माध्यम से आर्थिक पर्यावरण का निर्माण होता है। जीवधारियों के बौद्धिक स्तर से सांस्कृतिक पर्यावरण का निर्माण होता है। प्राकृतिक पर्यावरण ने मानव समाज की विभिन्न संरचनाओं एवं संगठनों के विकास एवं संम्बर्द्धन में सहायता प्रदान की है और पर्यावरण की गुणवत्ता तथा अस्तित्व मानव समाज की इन संरचनाओं पर निर्भर करता है।

पर्यावरण के संघटक परस्पर अन्योन्याश्रित होतें हैं जिससे पर्यावण संतुलन निर्मित होता है। पर्यावरण के विभिन्न अवयवों में, संतुलन की मात्रा में पाये जाने वाले निष्चित अनुपात में, जब कोई भौतिक, रासायनिक, जैविक अथवा अवांछनीय परिवर्तन होता है तो उसे पर्यावरण असंतुलन या प्रदूषण कहते हैं। सामान्यतया प्रकृति पारिस्थितिकीय संतुलन तथा पारिस्थितिक स्थिरता को कायम रखने के लिये स्वतः प्रयत्नषील रहती है परन्तु आधुनिक औद्योगिक समाज ने तीव्र गति से वृद्धि, प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध लोलुपतापूर्ण विदोहन, भूमि उपयोग में भारी वृहद स्तरीय परिवर्तन, औद्योगिक प्रतिष्ठानों एवं नगरीय क्षेत्रों के अनियमित एवं अनियोजित विस्तार के कारण पर्यावरण विक्षुब्द एवं अव्यवस्थित हो गया है। पर्यावरण असंतुलन के दो मूल कारक हैं जनसंख्या विस्फोट और ऊर्जा उत्सर्जन।

पर्यावरण असंतुलन के खतरे, प्राकृतिक और मानवीय दोनो क्रियाओं के कारण उत्पन्न होतें है परन्तु मानवीय हस्ताक्षेप ज्यादा प्रभावित करता है। जिससे पारिस्थितिकी तन्त्र की नैसर्गिक कार्यषैली में व्यवधान आ रहा है। जैविक सम्पदा नष्ट होने के कारण पौधे और प्राणी की कुछ प्रजातियां विलुप्त हो रही है। जैव आनुवांषिकी में परिवर्तन के कारण जैविक प्रतिरोध क्षमता का ह्रास हो रहा है। फलतः विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न हो रहे हैं। वायुमण्डलीय गैस की गुणवत्ता में हेर फेर से नयी पर्यावरणीय समस्याएं जन्म ले रहीं हैं। प्रकृति के प्रति संवेदनहीनता के परिणाम स्वरुप

लालची, स्वार्थी एवं कदाचारी मनोवृत्ति को बढ़ावा मिल रहा है। पर्यावरण असंतुलन के अन्य प्रमुख कारण है–औद्योगिक विकास की होड़ होना। पृथ्वी के औद्योगिक संयंत्रो से प्रति वर्ष 30 अरब घन मीटर प्रदूषित जल, 25 करोडघन मीटर धूल तथा 7 करोड़ टन जहरीली गैसे निकलती हैं। भोपाल गैस त्रासदी तथा सोवियत रुस चेरनोबिल नाभकीय विनाष; प्रौद्योगिकीय असफलता के विनाषकारी प्रभाव के स्पष्ट उदाहरण हैं। नई तकनीक ने उत्पादकता को इतना बढ़ा दिया है कि अब संसाधनों के भण्डार खाली हो रहें हैं।

कृषि क्षेत्रों में तकनीकीकरण के प्रभाव से उरवर्ता दिन प्रतिदिन क्षीण होती जा रही है। मृदा की स्वाभाविक गुणवत्ता बनाये रखने में जैवभार (बायो मॉस) की प्रमुख भूमिका होती है । मृदा संरक्षण हेतु जीवाष्म (ह्यूमस) दिन प्रतिदिन घटते जा रहे हैं। हरित क्रान्ति की त्वरित कार्यवाही के दो स्पष्ट दुष्परिणाम रहें हैं प्रथम मलेरिया की उच्च संभावना वाले मच्छरों की उत्पत्ति और द्वितीय बूढे एवं बच्चों में श्वासेन्द्रीय जनित बीमारी की वृद्धि। नाभिकीय उर्जा के विकास से रेडियोधर्मिता का कुप्रभाव पड़ रहा है। रासायनिक हथियारों का प्रयोग पर्यावरण में विष घोल रहा है। प्रथम विष्व युद्ध के दौरान 22 अप्रैल 1915 को जर्मनी की सेनाओं ने विषैली गैस का प्रयोग किया था। जिससे 5 हजार व्यक्ति मर गये और 15 हजार लोग प्रभावित हुये। द्वितीय विष्व युद्ध के दौरान 6 अगस्त 1943 को हिरोषिमा तथा 9 अगस्त 1943 को नागासाकी पर परमाणु बम बरसाये गये जिससे अपार जन धन की क्षति हुयी।

मानव ने होड़ लगाकर जीवाष्म ऊर्जा का उपयोग किया है जिससे पर्यावरण पंगु बन गया है। विष्व की 6 प्रतिषत आबादी वाला अमेरिका अकेले विष्व ऊर्जा का 30 प्रतिषत उपभोग करता है इसके विपरीत विष्व आबादी का 16 प्रतिषत वाला भारत विष्व ऊर्जा का मात्र 2 प्रतिषत उपयोग कर पाता है। नदी घाटी परियोजनाओं का अनियोजित विकास भी पर्यावरण संकट का कारण बनता जा रहा है।

नदी घाटी परियोजनाओं को लागू करने के पूर्व भूगर्भिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, जनांकिकीय, वनस्पति, वन्य जीव एवं अन्य परिस्थितिकीय पहलुओं की गहन छानबीन नही की जाती है। नदी परियोजनाओं के परिणाम स्वरुप भारत में सन् 1951 से 1971 की अवधि में 4.01 लाख हेक्टेयर वन क्षेत्रों का विनाष हुआ।

सन 1975 में भारत के सम्पर्ण भू–भाग के 17 प्रतिषत क्षेत्र पर वन थे जो सन 1981 में घटकर 14 प्रतिषत क्षेत्रफल पर रह गये। वनों की कमी से न तो जलवायु ही व्यवस्थित रहती है, न वन्य जीव पल सकतें हैं, न मनुष्य के लिये षुद्ध आक्सीजन सम्भव है, न हरित ग्रह प्रभाव व्यवस्थित रह सकता है और न विविधि वनोत्पाद प्राप्त हो सकतें हैं। अत्यधिक खनन से भी भूस्खलन एवं भूक्षरण होने लगता है। कोयले आदि के निकल जाने के कारण खाने धॅस जातीं हैं और अनेक पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न होतीं हैं। मंसूरी एवं देहरादून क्षेत्र से वनों को नष्ट कर तथा पहाड़ियों को तोड़कर प्रतिदिन 7 मिलियन टन पत्थर बाहर ले जाया जाता है जिससे आस–पास के बाहरों और गॉवों के जल स्रोत्र सूखते जा रहें हैं। भूक्षरण के कारण देहरादून घाटी में बासमती चावल की खेती तथा लीची के उत्पादन पर विध्वंसक प्रभाव पड़ा है। वर्तमान में मानव द्वारा पर्यावरण का सर्वाधिक अहित वायुमण्डल में किया जा रहा है ।

कल कारखानों और यातायात साधनों तथा जीवाष्म ईधन के दहन द्वारा छोडे जाने वाले प्रदूषक जैसे– सल्फर डाई आक्साइड, क्लोरीन, नाइट्रस आक्साइड, आर्सेनिक इत्यादि गैसो की सान्द्रता बढ़ रही है। फलतः प्रदूषित क्षेत्रों में कोयले जैसी धुंध की चादर फैल जाती है। वातावरण में करीब 700 मीटर की ऊँचाई पर इंवर्जन परत धूल और धुंये के सूक्ष्म कणों (आर0 एस0 पी0 एम0 एवं एस0 पी0 एम0) को ऊपर नही जाने देते फलतः बुजुर्गो, बच्चों और अस्थमा के मरीजो को सांस लेने में तकलीफो का सामना करना पड़ता है। हवा को प्रदूषित करने में सांगानेर तेल डिपों में लगी आग के सन्दर्भ में देखा जाये तो स्थिति बेहद भयावाह है। मौलाना आजाद मेडिकल कालेज, काम्युनिटी मेडिसन के प्रोफेसर जुगल किषोर के अनुसार भारी मात्रा में पेट्रोलियम पदार्थो के जलने के कारण हवा में कार्बन मोनो आक्साइड, नाइट्रस आक्साइड, कार्बन डाई आक्साइड गैसों के अलावा सस्पेंडेड पार्टिकल्स पहुॅच गयें हैं इसका दुष्प्रभाव स्पष्ट है।

अमेरिका के डेट्राइट (औद्योगिक) नगर में कारखानों के धुएं से वायुमण्डल में इतनी सल्फर डाई आक्साइड गैस जमा हो गयी कि बादलों के साथ रासायनिक क्रिया करके दहकते तेजाब के रुप में सल्फ्यूरिक एसिड की वर्षा होने लगी। वर्ष 1979 इटली के एक बाहर के कारखाने में ट्राई क्लोरो फिनेल तापमान अनियंत्रण के फलस्वरुप जहरीली डाई आक्सीजन गैसे में बदल गयी। परिणामस्वरुप मुर्गियां मर गयी और बुजुर्गो को खॉसी की षिकायत हो गयी। 3 दिसम्बर 1984 को भोपाल में मिथाईल आइसो साइनेट नामक द्रव पानी से संयोग करके जहरीली फास्फीन गैस बन गया।

जिससे हजारों लोग मारे गये। वायुमण्डल में गैसों के असंतुलन से पृथ्वी द्वारा सूर्य की किरणों का अधिक अवषोषण होने लगता है जिसके चलते पृथ्वी तेजी से गर्म होने लगती है। पृथ्वी के इस तरह से गर्म हो जाने प्रक्रिया, हरित ग्रह प्रभाव कहलाती है। कार्बन डाई आक्साइड, मीथेन, क्लोरो फ्लोरो कार्बन, नाइट्रस आक्साइड आदि गैसे हरित ग्रह प्रभाव उत्पन्न करतीं हैं। ये उष्मारोधी गैसे पृथ्वी के चारों ओर आच्छादित होकर पृथ्वी पर सौर विकिरण को पहॅुचने तो देती हैं परन्तु वापस अन्तरिक्ष मे जाने नही देती हैं । फलस्वरुप पृथ्वी के वायुमण्डल में ताप वृद्धि के कारण पर्वतीय और ध्रुवीय हिम जमाव के पिघलने से नदी घाटियों तथा मैदानों के नीचले भाग में बाढ़ और समुद्र के जलस्तर में वृद्धि से समुद्र तटीय नगरो अधिवासों और निम्न स्थलीय द्वीपों आदि के डूबने का खतरा उत्पन्न हो गया है और पृथ्वी के

वृहत भाग में सूखा का संकट मंडराने लगा है। ओजोन वायुमण्डल की बाहरी पर्त है जो हमें हानिकारक पराबैगनी विकिरणों से सुरक्षित रखती है। ओजोन कवच, सी0 एफ0 सी0 (क्लोरो–फ्लोरो–कार्बन) नामक रसायन समूहों से नष्ट हो रहा है । 1986 में मॉट्रियल प्रोटोकाल के अनुसार इनके अधिकतम उत्पादन की सीमा 1.1 मिलियन मीट्रिक निर्धारित की गयी थी।

संतुलित पर्यावरण में सभी प्राणी अपनी स्वाभाविक स्थिति में जीवन जीते हैं तथा अस्वाभाविक स्थिति में उनका क्षय हो जाता है। सामाजिक अभ्युदय के लिए समाज का सद्भावनापूर्ण मर्यादित व्यवहार अनिवार्य है। प्राकृतिक संसाधनों के सदुपयोग से समाज में भरपूर खुशहाली होती है। उत्तम परिवेश मानव मन को आनंदित करता है एवं उमंग का संचार पर देता है। जिससे मनुष्य को जटिल कार्यो को करने में सफलता भी प्राप्त होती है। भारत सदा से प्रकृति परायण देश रहा है। यहां संस्कारिता पर्यावरणीय शिक्षा की प्रधानता रही है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति प्रकृति से समायोजन पर आधारित रही है। प्राचीन काल एवं मध्य काल तक पर्यावरणीय शिक्षा, गुरुकुल आधारित रही है। भारतीय मनीषियों ने औपचारिक और अनौपचारिक ढंग से जनमानस में प्रकृति को मां के रूप में स्थापित कर, जन जन के आचरण को स्वतः नियंत्रित करके जो परंपरा शुरू की, वह अद्भुत थी।

वर्तमान में पर्यावरण सुरक्षा पृथ्वी के अस्तित्व का प्रश्न बन चुका है। आज विकास की अंधाधुंध दौड़ में पर्यावरण सुरक्षा केवल एक दिखावा बनकर रह गया है। यह एक भयावह परिस्थिति है। बढ़ती आबादी और गरीबी से हमारे पर्यावरण पर एवं संसाधनों पर बोझ बढ़ता जा रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के दो दशकों तक पर्यावरण सुधार कार्य पर बहुत कम ध्यान दिया गया। चौथी पंचवर्षीय योजना में पर्यावरण पर ध्यान दिया गया लेकिन गैर नियोजित कार्यक्रमों का परस्पर तालमेल नहीं बैठ सका।

भारत में पर्यावरण प्रदूषण के प्रभाव का आंकलन कार्य गंभीरतापूर्वक सन् 1978 में प्रारंभ किया गया। जनवरी 1994 में भारत सरकार ने एक अधिसूचना के माध्यम से सिंचाई, बिजली, औद्योगिक, उत्खनन, संचार आदि विभिन्न क्षेत्रों की पर्यावरण संबंधी परियोजनाओं की घोषणा की। इनकी देश में तीस श्रेणियां बनाई गई। अत्यधिक प्रदूषण फैलाने वाले 17 वर्गों के उद्योगों को अधिसूचित किया गया। जिसमें सीमेंट, उर्वरक, लोहा, तेल शोधन संस्थान, लुगदी और कागज उद्योग, कीटनाशक, चर्म शोधन उद्योग, सोडा, जस्ता, तांबा, एल्मुनियम, कास्टिक, डीजल इंजन वाले वाहनों इत्यादि में सुधार के लिए चरणबद्ध कार्यक्रम सन् 2000 में प्रारंभ किया गया।

इन प्रयासों के बावजूद वर्तमान में तापमान में वृद्धि के साथ-साथ प्राकृतिक संपदाओं का अव्यवस्थित उपयोग हुआ है। प्राकृतिक साधनों के अनुचित उपयोग से प्रदूषण फैलाने वाले तत्वों में वृद्धि होती रही है। आज जहां उपलब्धियों के नए कीर्तिमान प्राप्त हो रहे हैं वही सर्वाधिक क्षति पर्यावरण को हो रही है। वर्ष 2000 में विश्व भर में गरीबी और उससे जुड़ी सामाजिक समस्याओं जैसे निरक्षरता, भूख, महिलाओं के प्रति भेदभाव, सुरक्षित पेयजल तथा पर्यावरण विनाश को रोकने हेतु सभी देशों ने संयुक्त राष्ट्र सहस्त्राब्दी शिखर सम्मेलन में विचार विमर्ष किया।

इंटर गर्वनमेंट पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज के अनुसार विकसित देशों को सन् 2020 तक अपने कार्बन उत्सर्जन में 25 से 40% कमी करनी होगी। धरती पर 70% जल है परंतु पीने व अन्य आवश्यक उपयोग हेतु केवल 3% जल है। भारत में प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता सन् 1947 में 6000 घनमीटर थी जो सन् 2001 में 1829 घनमीटर रह गई। लगातार जल स्तर नीचे जा रहा है, आने वाले दिनों में समाज में पेयजल संकट की समस्या खड़ी हो जाएगी तापमान में बढ़ोतरी की यही दर रही तो सन् 2080 तक तापमान में 4 से 7 डिग्री सेल्सियस की शर्तिया वृद्धि होनी निष्चित है।

सन् 2001 में अंटार्कटिका में 12 वर्ग मील का बर्फीला टापू देखते–देखते पिघल गया। वहां पर तापमान में काफी बढ़ोतरी दर्ज की गई। इसके अलावा धरती की हरित पट्टी और गर्मी सोखने वाले हिमखंड और जल भंडार सिकुड़ते जा रहे हैं। जिससे मौसम ने बदलाव की राह पकड़ी है। पराबैंगनी किरणों से धरती को बचाने वाली ओजोन परत के क्षय हो जाने और धरती के रेगिस्तानी करण के लिए भी कमोबेश यही वजह जिम्मेदार हैं। जिनसे हमारे वायुमंडल में ठंडक की कमी और गर्मी की बढ़ोतरी हुई है। पिछले डेढ़ सौ वर्षों में तापमान में 1.8 डिग्री फारेनहाइट से 1. 6 डिग्री फारेनहाइट की बढ़ोतरी तो महज एक सूचक भर है कि किस तरह मानवीय क्रियाकलापों ने एक हरे–भरे ग्रह को काले जहरीले धूल में लिपटे ग्रह में तब्दील कर दिया है।

भारत में मार्च 1983 में दिल्ली में आयोजित शिक्षक प्रशिक्षण की कार्य गोष्ठी और फरवरी 1989 दिल्ली में आयोजित अंतर क्षेत्रीय प्रशिक्षण कार्यक्रम, पर्यावरणीय शिक्षा हेतु किए गए महत्वपूर्ण प्रयासों में से हैं। पर्यावरण शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए मात्र सम्मेलनों और गोष्ठियों तक सीमित रहने से काम नहीं चलेगा। मौसम में आ रहे बदलाव को लेकर विश्व मौसम संगठन की ताजा रिपोर्ट चौंकाने वाली है साथ ही यह भावी खतरे की ओर भी संकेत करती है।

यह रिपोर्ट बताती है कि पिछले 4 सालों से औसत वैश्विक तापमान बढ़ रहा है। जिसकी वजह से ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में बढ़ोतरी होती है। हवा में कार्बन की औसत मात्रा 400 पार्टिकल्स प्रति मिलियन तक के खतरनाक स्तर पर पहुंच गई है। यह तय मानकों से 43 फ़ीसदी ज्यादा है। रिपोर्ट के अनुसार पहले सन् 2014 को सबसे गर्म वर्ष माना गया था क्योंकि उस

दौरान औसत वैश्विक तापमान 0.61 डिग्री बढ़ा था लेकिन सन् 2015 में यह बढ़ोतरी कहीं ज्यादा 0.70 डिग्री दर्ज की गई। मौसम में आ रहे हैं बदलावों ने भारतीय कृषि को संकट में डाल दिया है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, फसलों को गर्मी के प्रभावों से बचाने के लिए उन्हें नए स्वरूपों में विकसित करने में जुटी है।

मसलन फसलों की नई किस्मों को कम अवधि, कम पानी और ज्यादा तापमान में उगने योग्य बनाया जा रहा है लेकिन जब तक नई किस्में तैयार होंगी तब तक मौसम के रूप में और कितना बदलाव आ चुके होंगे कहा नहीं जा सकता। देश के ज्यादातर बड़े राज्यों में बार–बार सूखे से हालात पैदा हो रहे हैं। मौसम विभाग के मुताबिक देश के 14 राज्यों में सामान्य से कम वर्षा हो रही है।

दरअसल सिर्फ वैज्ञानिक शोध अनुसंधानों के जरिए समझे जाने वाले खतरों से लड़ने के लिए हमारा शरीर तैयार नहीं होता अगर यह सब समझना है कि जलवायु परिवर्तन किस तरह मानव के लिए खाद्यान्न संकट बढ़ाएगा तो सबसे पहले हमें किताबी आंकड़ों से बाहर निकलना पड़ेगा। उसे अनुभव करना पड़ेगा क्योंकि बढ़ रहा तापमान मानव जीवन के लिए 2 गुना बड़ी चुनौती खड़ी कर सकता है। इसका असर रबी की फसल पर भी हुआ है क्योंकि खेतों में नमी नहीं थी जो बीज उगाने के लिए चाहिए सिर्फ सिंचाई वाले क्षेत्रों में ही गेहूं बोया जा सका।

लेकिन खतरा यहीं तक सीमित नहीं है आगे यदि मौसम गर्म बना रहा तो गेहूं की फसल झुलस सकती है। कृषि विशेषज्ञों के अनुसार गर्मी में गेहूं में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया गड़बड़ा जाती है और पर्याप्त पोषण के अभाव में गेहूं के दाने मजबूत नहीं होते। मौसम में आ रहे हालिया बदलाव भारतीय कृषि को संकट में डाल सकते हैं। खाद्यान्न में हमारी आत्मनिर्भरता प्रभावित हो सकती है।

वर्तमान में ग्रीन टेक्नोलॉजी पर्यावरण संरक्षण में सार्थक साबित हो रही है। यह तकनीक प्रदूषण से लड़ने में सहायक है। ग्रीन प्रौद्योगिकी में शाकाहार की भूमिका सराहनीय है। पशुपति उपनिषद में स्पष्ट है आहार में मांस त्याग देने से चितशुद्ध होता है और जीव हत्या भी नहीं होती। शाकाहारी होने से ग्रीन हाउस गैस का उत्सर्जन 1/6 : कम हो सकता है क्योंकि मांस पकाने मे 6 गुना ज्यादा ऊर्जा की खपत होती है। यदि जनसाधारण अकेले यात्रा के लिए एक निजी वाहन की जगह सार्वजनिक वाहन का प्रयोग करे तो 60ः वायु प्रदूषण कम हो सकता है। इसी प्रकार कागजों को अनावश्यक प्रयोग में नहीं लेने से और कागजों को रीसाइक्लिग के लिए देने से हम वृक्षों को काटने से बचा सकते है।

अपने घर के बगीचे को जैविक विविधता का संरक्षण केंद्र बनाकर उसमें स्थानीय पौधों को महत्व देकर, पानी का भी बुद्धिमतापूर्ण उपयोग करके हम पर्यावरण को लाभ पहुंचा सकते हैं। अतः आधुनिक वैज्ञानिक युग में यह आवश्यक है कि प्रकृति द्वारा प्रदत्त इस निधि, पर्यावरण का बुद्धिमतापूर्ण पूर्ण ढंग से उपयोग किया जाए और आने वाली पीढ़ी को भी इसके प्रति जागरुक बनाया जाए। पर्यावरण चेतना और पर्यावरण संरक्षण आज के युग की प्रमुख मांग है क्योंकि मानव जीवन का आधार प्रकृति ही है।

## संदर्भ ग्रंथ

1. वी0 एल0 शर्मा एवं पलक भरद्वाज, मानव पर्यावरण, मलिक एण्ड कम्पनी 2003
2. लक्ष्मण सिंह राठौर, महानिदेशक मौसम विभाग, हिंदुस्तान 14 जनवरी 2016
3. जागरण जोश, फरवरी 2008 पृष्ठ संख्या 17
4. प्रतियोगिता दर्पण, अगस्त 2008, पृष्ठ संख्या 78
5. आर0 ए0 शर्मा, इन्वायरमेंटल एजुकेशन, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ 2008
6. वाई0 के0 सिंह, टीचिंग ऑफ इन्वायरमेंटल सांइसेज, ए0 पी0 एच0 पब्लिषिंग कारपोरेषन, न्यू दिल्ली 2009
7. डी0 के0 श्रीवास्तव एवं बी0 पी0 राव, पर्यावरण और पारिस्थितिकी, 1998, पृष्ठ संख्या 259
8. डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव, नई सहस्त्राब्दी का पर्यावरण, ओमेगा पब्लिकेषन्स, 2010, दिल्ली